[2021] 4 उम. नि. प. 1

हरियाणा राज्य और अन्य

बनाम

राजकुमार उर्फ बिट्टू

[2021 की दांडिक अपील सं. 721]

3 अगस्त, 2021

न्यायमूर्ति हेमंत गुप्ता और न्यायमूर्ति ए. एस. बोपन्ना

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 432, धारा 433 और धारा 433क [सपठित भारत का संविधान, 1950 का अनुच्छेद 161] – समुचित सरकार की दंडादेशों का निलंबन, परिहार और लघुकरण करने की शक्ति – हरियाणा सरकार द्वारा बंदियों के दंडादेशों के निलंबन, परिहार और लघुकरण के लिए संविधान और दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए नीतियां विरचित किया जाना – आजीवन कारावास भुगत रहे बंदी-प्रत्यर्थी द्वारा 12 वर्ष और 25 दिन का कारावास भुगत लेने के पश्चात् समय-पूर्व छोड़े जाने के लिए आवेदन फाइल किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा सरकार की विद्यमान नीतियों के स्थान पर नई नीति बनाने का निदेश दिया जाना और बंदी को राहत प्रदान न किया जाना – सरकार और बंदी-प्रत्यर्थी द्वारा उच्चतम न्यायालय में चुनौती दिया जाना – सरकार द्वारा बनाई गई दोनों नीतियों को बंदी द्वारा भुगत ली गई कारावास की अवधि को ध्यान में रखते हुए पढ़ा जाना चाहिए और राज्य सरकार द्वारा परिहार की शक्ति का प्रयोग वहां किया जाना चाहिए जहां यदि बंदी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 433क की परिधि के अंतर्गत आने वाले मामले में 14 वर्ष के कारावास की वास्तविक अवधि भुगत ली है और ऐसे मामले में, जहां कारावास की अवधि 14 वर्ष से कम है, बंदी को समय-

पूर्व छोड़े जाने की शक्ति का प्रयोग राज्यपाल द्वारा, राज्य सरकार की सहायता और सलाह से किया जा सकता है, अत: दोनों नीतियां कानूनी प्रकृति की हैं तथा आजीवन कारावास भुगत रहे बंदी-प्रत्यर्थी के मामले में उसके द्वारा केवल 14 वर्ष का वास्तविक कारावास भुगत लेने पर विचार किया जा सकता है, किंतु राज्य सरकार 14 वर्ष से कम भुगत ली गई अवधि की दशा में समय-पूर्व छोड़े जाने के लिए अनुच्छेद 161 के अधीन उसके मामले पर विचार कर सकती है ।

इन अपीलों के तथ्य इस प्रकार हैं कि हरियाणा राज्य द्वारा बंदियों के दंडादेश का परिहार करने के लिए समय-समय पर कई नीतियां विरचित की गई थीं । प्रथम नीति तारीख 23 अप्रैल, 1987 को परिचालित की गई थी, जिसमें ऐसे सिद्धदोष व्यक्तियों को, जिन पर ऐसे अपराध की दोषसिद्धि पर आजीवन कारावास का दंड अधिरोपित किया गया है जिसके लिए मृत्यु दंड विधि द्वारा उपबंधित दंडों में से एक है, या जहां किसी व्यक्ति पर अधिरोपित मृत्यु दंडादेश का तारीख 18 दिसंबर, 1978 को या उसके पश्चात् संहिता की धारा 433 के अधीन लघुकरण किया गया है, उनके द्वारा 14 वर्ष का मूल दंडादेश भुगत लेने के पश्चात् राज्य सरकार द्वारा समय-पूर्व छोड़ने के लिए विचार किया जाएगा । उसके पश्चात्, तारीख 28 सितंबर, 1988, 19 नवंबर, 1991, 8 अगस्त, 2000 और 12 अप्रैल, 2002 की नीतियां यह अनुध्यात करते हुए जारी की गई थीं कि संहिता की धारा 433 की परिधि के अंतर्गत आने वाले समय-पूर्व छोड़े जाने के मामले पर व्यक्तिगत आधार पर राज्य स्तरीय समिति द्वारा पुनर्विलोकन के पश्चात् विचार किया जाएगा और उसके पश्चात् मामले माननीय राज्यपाल को भेजे जाएंगे । तथापि, तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति में यह अनुध्यात नहीं है कि व्यक्तिगत मामले माननीय राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत किए जाएंगे । राज्य और उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याची (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'बंदी' कहा गया है) पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ की विद्वान् एकल न्यायपीठ द्वारा तारीख 12 मई, 2020 को पारित किए गए उस आदेश से व्यथित हैं, जिसके द्वारा बंदियों को परिहार प्रदान करने की राज्य की नीतियों का विनिश्चय किया गया था

और राज्य को, अन्य बातों के साथ-साथ, यह निदेश दिया गया था कि एक नई नीति का प्रारूप तैयार करने की व्यवहार्यता पर विशिष्ट रूप से संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग की बाबत विचार किया जाए । यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि राज्य भूतलक्षी प्रवर्तन के साथ एक नीति की व्यवहार्यता पर भी विचार करे, बशर्ते उसके कारण समान रूप से स्थित बंदियों की सारभूत संख्या के बीच विभेद न होता हो । न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि जिस समय तक ऐसा विनिश्चय किया जाता है, समुचित सरकार तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति के निबंधनों के अनुसार दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 432 और धारा 433 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग, किंतु संहिता की धारा 433क के अधीन अधिरोपित निर्बंधनों का कड़ाईपूर्वक पालन करते हुए, कर सकती है । राज्य और इस अपील में प्रत्यर्थियों द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – तारीख 13 अगस्त, 2008 की समय-पूर्व छोड़े जाने की नीति राज्यपाल के नाम में जारी की गई थी और शासकीय राजपत्र में प्रकाशित की गई थी । यह अधिसूचना कथित रूप से संहिता की धारा 432 की उपधारा (1) और धारा 433 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी की गई थी । ऐसी नीति संहिता के उपबंधों के निबंधनों के अनुसार समुचित प्रकार की प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी की गई है और इस प्रकार इसकी प्रकृति कानूनी है । तारीख 12 अप्रैल, 2002 की अन्य नीति वास्तव में वित्तायुक्त और सचिव, हरियाणा सरकार, कारागार विभाग, चंडीगढ़ द्वारा कारागार महानिदेशक, हरियाणा, चंडीगढ़ को जारी किया गया एक ज्ञापन है । समय-पूर्व छोड़े जाने की यह नीति भी संहिता के उपबंधों के अनुसार है । हरियाणा सरकार की ओर से विद्वान् अपर महाधिवक्ता, श्री निखिल गोयल ने यह दलील दी कि समय-समय पर भिन्न-भिन्न नीतियां जारी की गई हैं और बाद की नीति ने पूर्ववर्ती नीतियों को अधिक्रांत किया है, इसलिए कोई अंतराल नहीं था जब समय-पूर्व छोड़े जाने की कोई नीति प्रवर्तन में

नहीं थी या किसी सुसंगत समय पर दो नीतियां प्रवर्तन में थीं । श्री गोयल का तर्क स्वीकार करने योग्य है क्योंकि तारीख 12 अप्रैल, 2002 की नीति तारीख 8 अगस्त, 2000 को परिचालित पूर्ववर्ती नीति का अधिक्रमण करते हुए है, जिसे बाद में तारीख 23 फरवरी, 2001 को प्रतिस्थापित किया गया था । तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति तारीख 12 अप्रैल, 2002 की पूर्ववती नीति के स्थान पर प्रतिस्थापित की गई थी और यह नीति राज्य के राज्यपाल की ओर से प्रकाशित की गई थी । तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति संहिता की धारा 433 के साथ पठित धारा 432 की उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए और तारीख 12 अप्रैल, 2002 के सरकारी ज्ञापन और सभी अन्य नीतियों का अधिक्रमण करते हुए जारी की गई थी । तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति एक कानूनी नीति है । उक्त नीति को संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए क्षमा करने, दंडादेश का परिहार या लघुकरण करने के लिए माननीय राज्यपाल में निहित विवेकाधिकार को छीनने की कोशिश नहीं कहा जा सकता है और कोशिश नहीं की गई है अपितु यह कानून के अधीन जारी की गई एक नीति है और इसलिए इस नीति का एक कानूनी बल है । तारीख 12 अप्रैल, 2002 की नीति भी एक कानूनी नीति है और इसे तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति की बजाय एक उच्चतर स्थान पर नहीं रखा जा सकता है और इसका कारण यह है कि इसमें माननीय राज्यपाल का अनुमोदन प्राप्त करने की ईप्सा की गई है । इस नीति को विनिर्दिष्ट रूप से तारीख 13 अगस्त, 2008 को अभिभावी किया गया था और यह उन सिद्धदोष व्यक्तियों के लिए प्रवर्तनीय नहीं होगी जो तारीख 13 अगस्त, 2008 के पश्चात् दोषसिद्ध किए गए हैं । संहिता की धारा 433 एक सर्वोपरि खंड से आरंभ होती है जिसमें समुचित सरकार के किसी ऐसे व्यक्ति के आजीवन कारावास के दंडादेश को निलंबित करने के अधिकार को निर्बंधित किया गया है जिस पर ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्धि पर आजीवन कारावास का दंडादेश अधिरोपित किया गया है, जिस अपराध के लिए मृत्यु दंड विधि द्वारा उपबंधित दंडों में से एक है और ऐसा व्यक्ति कारावास से तब तक नहीं छोड़ा जाएगा जब तक उसने चौदह वर्ष का कारावास पूरा न कर लिया हो । अत: किसी बंदी को

चौदह वर्ष का वास्तविक कारावास भुगतने के पश्चात् छोड़ने की समुचित सरकार की शक्ति राज्य सरकार में निहित है । दूसरी ओर, राज्यपाल को प्रदत्त शक्ति, यद्यपि जो राज्य की सहायता और सलाह से प्रयुक्त की जाती है, किसी ऐसे निर्बंधन से रहित है कि बंदी द्वारा वास्तविक अवधि का कारावास भुगत लिया गया हो । इस प्रकार, यदि किसी बंदी ने चौदह वर्ष के वास्तविक कारावास से अधिक भुगत लिया है तो राज्य सरकार, एक समुचित सरकार के रूप में, समय-पूर्व छोड़े जाने का आदेश पारित करने के लिए सक्षम है किंतु यदि बंदी ने चौदह वर्ष का वास्तविक कारावास या इससे अधिक नहीं भुगत लिया है, तो राज्यपाल को संहिता की धारा 433क के अधीन अधिरोपित निर्बंधनों के होते हुए किसी व्यक्ति के दंड को क्षमा, उसका प्रविलंबन, विराम या परिहार करने की अथवा दंडादेश में निलंबन, परिहार या लघुकरण करने की शक्ति है । ऐसी शक्ति राज्य की शक्ति का प्रयोग करते हुए है, यद्यपि राज्यपाल राज्य सरकार की सहायता और सलाह पर कार्य करने के लिए आबद्ध है । तारीख 12 अप्रैल, 2002 की नीति उन बंदियों के मामले में लागू है जिन्होंने चौदह वर्ष के कारावास का वास्तविक दंडादेश भुगत लिया है और उन बंदियों पर भी लागू है जिन्होंने चौदह वर्ष का वास्तविक कारावास पूरा नहीं किया है । अत: उन बंदियों के मामले, जिन्होंने चौदह वर्ष का वास्तविक कारावास पूरा कर लिया है, राज्य सरकार द्वारा संहिता की धारा 432 और धारा 433 के निबंधनों के अनुसार विनिश्चित किए जा सकते हैं, यदि राज्य सरकार माननीय राज्यपाल के अनुमोदन की ईप्सा करना नहीं चाहती है । सभी मामलों में माननीय राज्यपाल के अनुमोदन की ईप्सा करने में कुछ भी अवैध या अनुचित नहीं है किंतु जहां संहिता की धारा 433क की परिधि के अंतर्गत आने वाले मामलों में बंदी ने चौदह वर्ष का वास्तविक कारावास नहीं भुगत लिया है, वहां यह माननीय राज्यपाल पर निर्भर है कि वह संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग, यद्यपि राज्य सरकार की सहायता और सलाह पर करे । इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि तारीख 12 अप्रैल, 2002 की नीति के खंड (ख) में उन बंदियों के मामलों पर विचार किए जाने के लिए उपबंध किया गया है जिन्होंने विचारणाधीन अवधि सहित 10 वर्ष का वास्तविक कारावास भुगत लिया है, परंतु ऐसे दंडादेश की

कुल अवधि परिहार सहित चौदह वर्ष से कम न हो । संहिता की धारा 433क द्वारा जिनके बारे में परिहार अनुध्यात नहीं किया गया है, वहां राज्यपाल द्वारा संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए दंडादेश को कम करने की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है । उक्त नीति की अंतिम पंक्ति में यह स्पष्ट किया गया है कि ऐसे मामले बंदी की पूरी पृष्ठभूमि और समिति की सिफारिशों के साथ और आदेशों के लिए निर्णय की प्रति सहित संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल के समक्ष भेजे जाएंगे । तारीख 13 अगस्त, 2008 की अधिसूचना समुचित सरकार को संहिता की धारा 432(5) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रकाशित की गई थी, जिसमें यह उपबंधित है कि समुचित सरकार दंडादेशों के निलंबन के बारे में और उन शर्तों के बारे में जिन पर अर्जियां उपस्थित कीं और निपटाई जानी चाहिएं, साधारण नियमों या विशेष आदेशों द्वारा निदेश दे सकती है । अत: समय-समय पर जारी की गई सभी नीतियां संहिता की धारा 432 के अधीन जारी की गई हैं, यद्यपि तारीख 13 अगस्त, 2008 को अंतिम बार जारी की गई नीति के सिवाय किसी भी नीति में ऐसे उपबंधों के प्रति निर्देश नहीं किया गया है । मार्गदर्शक सिद्धांत या परिहार आदि की नीतियां विरचित करने की शक्ति का स्रोत पहले बंदी अधिनियम, 1894 की धारा 59(5) में था और अब संहिता की धारा 432(5) के निबंधनों के अनुसार है । इसलिए ऐसी नीतियां कानूनी प्रकृति की हैं जो समुचित सरकार को संहिता की धारा 432(5) के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए विरचित की गई हैं । तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति का खंड 2(ग) उन सिद्धदोष व्यक्तियों के संबंध में है, जिन्हें ऐसा अपराध कारित करने के लिए आजीवन कारावास दिया गया है जो भारतीय दंड संहिता, 1860 में आजीवन कारावास के लिए दंडनीय के रूप में परिभाषित है किंतु मृत्यु दंडादेश से दंडनीय नहीं है । ऐसे बंदियों के मामलों पर विचारणाधीन अवधि सहित 10 वर्ष का वास्तविक दंडादेश पूर्ण होने के पश्चात् विचार किया जा सकता है बशर्ते ऐसे दंडादेश की परिहार सहित कुल अवधि चौदह वर्ष से कम न हो । विभेद यह है कि ऐसे मामलों में परिहार को विचार में लिया जाता है, जबकि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन ऐसे अपराध के लिए, जो मृत्यु से

दंडनीय है, किसी सिद्धदोष बंदी द्वारा अर्जित परिहार को समय-पूर्व छोड़े जाने के लिए विचार में नहीं लिया जा सकता है । यदि भारतीय दंड संहिता के अधीन अपराध के लिए आजीवन कारावास के मामलों में समय-पूर्व छोड़े जाने के लिए किसी बंदी के मामले पर विचार किया जाना है, तो संहिता की धारा 433क के अधीन वर्जन लागू नहीं होगा । अत: इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय द्वारा जारी किए गए निदेश संधार्य नहीं हैं और इसका कारण यह है कि इन नीतियों को बंदी द्वारा भुगत लिए गए कारावास की अवधि को ध्यान में रखते हुए पढ़ा जाना चाहिए । परिहार की शक्ति का प्रयोग राज्य सरकार द्वारा, एक समुचित सरकार के रूप में, वहां किया जाना चाहिए यदि बंदी ने संहिता की धारा 433क की परिधि के अंतर्गत आने वाले मामलों में चौदह वर्ष का वास्तविक कारावास भुगत लिया है और यदि कारावास चौदह वर्ष से कम है तो समय-पूर्व छोड़े जाने की शक्ति का प्रयोग राज्यपाल द्वारा, यद्यपि राज्य सरकार की सहायता और सलाह पर, किया जा सकता है । परिणामत:, विद्वान् एकल न्यायपीठ द्वारा जारी किए गए निदेश संधार्य नहीं हैं और तद्द्वारा अपास्त किए जाते हैं । (पैरा 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21 और 22)

इस मामले में बंदी ने राज्य द्वारा प्रस्तुत किए गए अभिरक्षा प्रमाणपत्र के अनुसार तारीख 6 जुलाई, 2021 को 12 वर्ष और 25 दिन पूरे कर लिए हैं । तारीख 13 अगस्त, 2008 की राज्य सरकार की नीति के निबंधनों के अनुसार, जो नीति बंदी की दोषसिद्धि की तारीख को लागू थी, उसे समय-पूर्व छोड़े जाने के मामले पर केवल उसके द्वारा चौदह वर्ष का वास्तविक कारावास पूरा किए जाने के पश्चात् विचार किया जा सकता है । तथापि, राज्य सरकार चौदह वर्ष से कम कारावास भुगतने के पश्चात् समय-पूर्व छोड़ने के लिए प्रश्नगत बंदी के मामले पर संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन विचार कर सकती है । (पैरा 23)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	(2016) 7 एस. सी. सी. 1 : **भारत संघ** बनाम **श्रीहरण और अन्य** ;	10

[2010] (2010) 4 एस. सी. सी. 216 :
हरियाणा राज्य और अन्य बनाम **जगदीश** ; 4, 5

[2007] (2007) 13 एस. सी. सी. 606 :
हरियाणा राज्य बनाम **महेन्द्र सिंह और अन्य** ; 5

[2004] (2004) 12 एस. सी. सी. 278 :
एन. मणि बनाम **संगीता थिएटर और अन्य** ; 7

[2000] (2000) 3 एस. सी. सी. 514 :
हरियाणा राज्य बनाम **नौरत्ता सिंह और अन्य** ; 12

[1984] [1984] 3 उम. नि. प. 365 =
(1984) 2 एस. सी. सी. 310 :
साधु सिंह और अन्य बनाम **पंजाब राज्य** ; 5

[1981] [1981] 4 उम. नि. प. 165 =
(1981) 1 एस. सी. सी. 107 :
माडू राम बनाम **भारत संघ और अन्य** ; 9

[1961] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 200 :
एल. हजारी मल कुथियाला बनाम **आयकर अधिकारी, विशेष सर्किल, अंबाला कैंट** । 6

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2021 की दांडिक अपील सं. 721.

2019 की दांडिक रिट याचिका सं. 2025 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के तारीख 12 मई, 2020 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

हाजिर होने वाले पक्षकारों की ओर से सर्वश्री ऋषि मल्होत्रा, निखिल गोयल, अपर महाधिवक्ता और डा. मोनिका गुसेन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति हेमंत गुप्ता ने दिया ।

न्या. गुप्ता – राज्य और उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याची (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'बंदी' कहा गया है) पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ की विद्वान् एकल न्यायपीठ द्वारा तारीख 12 मई, 2020 को पारित किए गए उस आदेश से व्यथित हैं, जिसके द्वारा बंदियों

को परिहार प्रदान करने की राज्य की नीतियों का विनिश्चय किया गया था और राज्य को, अन्य बातों के साथ-साथ, यह निदेश दिया गया था कि एक नई नीति का प्रारूप तैयार करने की व्यवहार्यता पर विशिष्ट रूप से संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग की बाबत विचार किया जाए । यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि राज्य भूतलक्षी प्रवर्तन के साथ एक नीति की व्यवहार्यता पर भी विचार करे, बशर्ते उसके कारण समान रूप से स्थित बंदियों की सारभूत संख्या के बीच विभेद न होता हो । न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि जिस समय तक ऐसा विनिश्चय किया जाता है, समुचित सरकार तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति के निबंधनों के अनुसार दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे संक्षेप में 'संहिता' कहा गया है) की धारा 432 और धारा 433 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग, किंतु संहिता की धारा 433क के अधीन अधिरोपित निर्बंधनों का कड़ाईपूर्वक पालन करते हुए, कर सकती है ।

2. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने राज्य सरकार द्वारा परिचालित कतिपय नीतियों को निर्दिष्ट किया । निर्दिष्ट की गई प्रथम नीति तारीख 23 अप्रैल, 1987 को परिचालित की गई थी, जिसमें ऐसे सिद्धदोष व्यक्तियों को, जिन पर ऐसे अपराध की दोषसिद्धि पर आजीवन कारावास का दंड अधिरोपित किया गया है जिसके लिए मृत्यु दंड विधि द्वारा उपबंधित दंडों में से एक है, या जहां किसी व्यक्ति पर अधिरोपित मृत्यु दंडादेश का तारीख 18 दिसंबर, 1978 को या उसके पश्चात् संहिता की धारा 433 के अधीन लघुकरण किया गया है, उनके द्वारा 14 वर्ष का मूल दंडादेश भुगत लेने के पश्चात् राज्य सरकार द्वारा समय-पूर्व छोड़ने के लिए विचार किया जाएगा । उसके पश्चात्, तारीख 28 सितंबर, 1988, 19 नवंबर, 1991, 8 अगस्त, 2000 और 12 अप्रैल, 2002 की नीतियां यह अनुध्यात करते हुए जारी की गई थीं कि संहिता की धारा 433 की परिधि के अंतर्गत आने वाले समय-पूर्व छोड़े जाने के मामले पर व्यक्तिगत आधार पर राज्य स्तरीय समिति द्वारा पुनर्विलोकन के पश्चात् विचार किया जाएगा और उसके पश्चात् मामले माननीय राज्यपाल को भेजे जाएंगे । तथापि, तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति में यह अनुध्यात नहीं है कि व्यक्तिगत मामले माननीय राज्यपाल के

समक्ष प्रस्तुत किए जाएंगे ।

3. संविधान और संहिता के सुसंगत उपबंध निम्नलिखित हैं :–

भारत का संविधान

"**161. क्षमा आदि की और कुछ मामलों में दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघुकरण की राज्यपाल की शक्ति–** किसी राज्य के राज्यपाल को उस विषय संबंधी, जिस विषय पर उस राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, किसी विधि के विरुद्ध किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराए गए किसी व्यक्ति के दंड को क्षमा, उसका प्रविलंबन, विराम या परिहार करने की अथवा दंडादेश में निलंबन, परिहार या लघुकरण की शक्ति होगी ।"

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

"**धारा 432. दंडादेशों का निलंबन या परिहार करने की शक्ति–** (1) जब किसी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए दंडादेश दिया जाता है तब समुचित सरकार किसी समय, शर्तों के बिना या ऐसी शर्तों पर जिन्हें दंडादिष्ट व्यक्ति स्वीकार करे, उसके दंडादेश के निष्पादन का निलंबन या जो दंडादेश उसे दिया गया है उसका पूरे का या उसके किसी भाग का परिहार कर सकती है ।

(2) * * *

(5) समुचित सरकार दंडादेशों के निलंबन के बारे में और उन शर्तों के बारे में जिन पर अर्जियां उपस्थित कीं और निपटाई जानी चाहिए, साधारण नियमों या विशेष आदेशों द्वारा निदेश दे सकती है :

परंतु अठारह वर्ष से अधिक की आयु के किसी पुरुष के विरुद्ध किसी दंडादेश की दशा में (जो जुर्माने के दंडादेश से भिन्न है) दंडादिष्ट व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दी गई कोई ऐसी अर्जी तब तक ग्रहण नहीं की जाएगी जब तक दंडादिष्ट व्यक्ति जेल में न हो, तथा –

(क) जहां ऐसी अर्जी दंडादिष्ट व्यक्ति द्वारा दी जाती है

वहां जब तक वह जेल के भारसाधक अधिकारी की मार्फत उपस्थित न की जाए ; अथवा

(ख) जहां ऐसी अर्जी किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दी जाती है वहां जब तक उसमें यह घोषणा न हो कि दंडादिष्ट व्यक्ति जेल में है ।

(6) * * *

(7) इस धारा में और धारा 433 में "समुचित सरकार" पद से –

(क) उन दशाओं में जिनमें दंडादेश ऐसे विषय से संबद्ध किसी विधि के विरुद्ध अपराध के लिए है, या उपधारा (6) में निर्दिष्ट आदेश ऐसे विषय से संबद्ध किसी विधि के अधीन पारित किया गया है, जिस विषय पर संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, केंद्रीय सरकार, अभिप्रेत है ;

(ख) अन्य दशाओं में, उस राज्य की सरकार अभिप्रेत है जिसमें अपराधी दंडादिष्ट किया गया है या उक्त आदेश पारित किया गया है ।

433. दंडादेश के लघुकरण की शक्ति – समुचित सरकार दंडादिष्ट व्यक्ति की सम्मति के बिना –

(क) मृत्यु दंडादेश का भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) द्वारा उपबंधित किसी अन्य दंड के रूप में लघुकरण कर सकती है ;

(ख) आजीवन कारावास के दंडादेश का, चौदह वर्ष से अनधिक अवधि के कारावास में या जुर्माने के रूप में लघुकरण कर सकती है ;

(ग) कठिन कारावास के दंडादेश का किसी ऐसी अवधि के सादा कारावास में, जिसके लिए वह व्यक्ति दंडादिष्ट किया जा सकता है, या जुर्माने के रूप में लघुकरण कर सकती है ;

(घ) सादा कारावास के दंडादेश का जुर्माने के रूप में

लघुकरण कर सकती है ।

433क. कुछ मामलों में छूट या लघुकरण की शक्तियों पर निर्बंधन – धारा 432 में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी व्यक्ति को ऐसे अपराध के लिए, जिसके लिए मृत्यु दंड विधि द्वारा उपबंधित दंडों में से एक है, आजीवन कारावास का दंडादेश दिया गया है या धारा 433 के अधीन किसी व्यक्ति को दिए गए मृत्यु दंडादेश का आजीवन कारावास के रूप में लघुकरण किया गया है, वहां ऐसा व्यक्ति कारावास से तब तक नहीं छोड़ा जाएगा जब तक कि उसने चौदह वर्ष का कारावास पूरा न कर लिया हो ।"

4. प्रस्तुत अपीलों में उद्भूत विवाद्यक इस संबंध में है कि तारीख 25 मार्च, 2010 को दोषसिद्ध किए गए बंदी पर तारीख 12 अप्रैल, 2002 की नीति लागू होगी अथवा तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति । इस न्यायालय ने **हरियाणा राज्य और अन्य** बनाम **जगदीश**[1] वाले मामले में (पैरा 52 में) अन्य बातों के साथ-साथ, यह अभिनिर्धारित किया था कि तारीख 4 फरवरी, 1993 की नीति में संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करना निर्दिष्ट किया गया है जबकि तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति संहिता की धारा 433 और धारा 433क के साथ पठित धारा 432 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए है । उक्त नीति एक प्रक्रिया का नियम है और इस प्रकार संविधान के अधीनस्थ है । अनुच्छेद 161 के अधीन प्रयोग की गई शक्ति संविधान की एक आज्ञा है, इसलिए तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति, तारीख 4 फरवरी, 1993 की नीति को अध्यारोही नहीं कर सकती है । यही वह उक्त निष्कर्ष है जिसकी परीक्षा प्रस्तुत अपीलों में, यद्यपि तारीख 12 अप्रैल, 2002 की इसी प्रकार की बाद की नीति के संदर्भ में की जानी अपेक्षित है । इससे पूर्व कि समय-पूर्व छोड़े जाने के मामले पर विचार किया जा सके, दोनों नीतियों को इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है । परस्पर सानिध्य में दोनों नीतियां इस प्रकार हैं :–

---

[1] (2010) 4 एस. सी. सी. 216.

12 अप्रैल, 2002		**13 अगस्त, 2008**	
हरियाणा सरकार के ज्ञापन सं. 36/135/91-आईजेजे(II), तारीख 8 अगस्त, 2000 जिसे तारीख 23 फरवरी, 2001 को सम-संख्यांक द्वारा पुन: प्रतिस्थापित किया गया था, का अधिक्रमण करते हुए सरकार ने आजीवन कारावास से सिद्धदोष व्यक्तियों को समय-पूर्व छोड़े जाने के संबंध में नीति का निम्न प्रकार से पुनरीक्षण करने का विनिश्चय किया है :–		हरियाणा के राज्यपाल दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का अधिनियम सं. 2) की धारा 433 के साथ पठित धारा 432 की उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए और हरियाणा सरकार के ज्ञापन सं. 36/135/91-आईजेजे(II), तारीख 8 अगस्त, 2000 और सभी अन्य पूर्ववर्ती नीतियों का अधिक्रमण करते हुए तद्द्वारा आजीवन कारावास से सिद्धदोष व्यक्तियों को समय-पूर्व छोड़े जाने के संबंध में निम्नलिखित नीति विरचित करते हैं, अर्थात् –	
(कक) ऐसे सिद्धदोष व्यक्ति जिनके मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में लघुकृत किया गया है और ऐसे सिद्धदोष व्यक्ति जिन्हें कोई जघन्य अपराध कारित करने के लिए आजीवन कारावास दिया गया है जैसे – (i) बलात्संग के पश्चात् हत्या, बार-बार/सिलसिलेवार बलात्संग/अनैसर्गिक अपराध ।	उनके मामलों पर 20 वर्ष का वास्तविक दंडादेश और परिहार सहित 25 वर्ष का कुल दंडादेश पूर्ण होने के पश्चात् विचार किया जा सकेगा ।	(क) ऐसे सिद्धदोष व्यक्ति जिनके जिनके मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में लघ में लघुकृत किया गया है से और और ऐसे सिद्धदोष व्यक्ति जिन्हें जिन्हें कोई जघन्य अपराध अपराध कारित करने लिए के लिए आजीवन कारावास दिया दिया गया है जैसे – (i) बलात्संग के साथ हत्या/अनैसर्गिक अपराध	समय-पूर्व छोड़े जाने के लिए उनके मामलों पर 20 वर्ष का वास्तविक दंडादेश और परिहार सहित 25 वर्ष का कुल दंडादेश पूर्ण होने के पश्चात् विचार किया जा सकेगा ।
* * *	* * *	* * *	* * *
(क) ऐसे सिद्धदोष व्यक्ति जिन्हें कोई वास्तविक जघन्य अपराध कारित करने के लिए आजीवन कारावास दिया गया	उनके मामलों पर विचारणाधीन अवधि सहित 14 वर्ष का दंडादेश पूर्ण होने के पश्चात् विचार किया जा सकेगा बशर्ते ऐसे	(ख) ऐसे सिद्धदोष व्यक्ति जिन्हें ऐसा कोई अपराध कारित करने के लिए आजीवन कारावास दिया गया है जो भारतीय दंड संहिता	उनके मामलों पर समय-पूर्व छोड़े जाने के लिए विचारणाधीन अवधि सहित 14 वर्ष का दंडादेश पूर्ण होने के

है, जैसे – (i) उद्घापन/लूट के लिए सदोष परिरोध सहित हत्या ।	दंडादेश की कुल अवधि परिहारों सहित 20 वर्ष से कम न हो ।	और/या स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम में मृत्यु दंडादेश से दंडनीय अपराध के रूप में परिभाषित है ।	पश्चात् विचार किया जा सकेगा बशर्ते ऐसे दंडादेश की कुल अवधि परिहारों सहित 20 वर्ष से कम न हो ।
(ख) आजीवन कारावास से सिद्धदोष ऐसे वयस्क जिन्हें आजीवन कारावास दिया गया है किंतु जिनके मामले उपरोक्त (कक) और (क) के अंतर्गत नहीं आते हैं तथा जिन्होंने उपरोक्त खंड (कक) और (क) में यथा वर्णित जघन्य अपराध कारित किए हैं ।	उनके मामलों पर विचारणाधीन अवधि सहित 10 वर्ष का वास्तविक दंडादेश पूर्ण होने के पश्चात् विचार किया जा सकेगा बशर्ते ऐसे दंडादेश की अवधि परिहार सहित 14 वर्ष से कम न हो ।	(ग) ऐसे सिद्धदोष व्यक्ति जिन्हें ऐसा कोई अपराध कारित करने के लिए आजीवन कारावास दिया गया है जो भारतीय दंड संहिता में आजीवन कारावास से न कि मृत्यु दंडादेश से दंडनीय अपराध के रूप में परिभाषित है ।	उनके मामलों पर विचारणाधीन अवधि सहित 10 वर्ष का वास्तविक दंडादेश पूर्ण होने के पश्चात् विचार किया जा सकेगा बशर्ते ऐसे दंडादेश की अवधि परिहार सहित 14 वर्ष से कम न हो ।

* * *

5. कारागार महानिदेशक, हरियाणा सभी ऐसे समय-पूर्व छोड़े जाने के मामले पर विचार के लिए राज्य स्तरीय समिति को प्रस्तुत करेंगे । समिति की बैठक जेल मंत्री, हरियाणा की सुविधानुसार तीन माह में एक बार होगी जिससे इस नीति के अधीन पुनर्विलोकन के मामलों में विलंब न हो । कारागार महानिदेशक, हरियाणा समिति द्वारा किए गए विनिश्चय की एक प्रति प्रत्येक आजीवन कारावास से सिद्धदोष व्यक्ति की नामावली के साथ एक सप्ताह के भीतर आगामी कार्रवाई के लिए राज्य सरकार को भेजेगा । ऐसे मामले जेल मंत्री और मुख्य मंत्री, हरियाणा के माध्यम से बंदी की पूर्ण पृष्ठ भूमि के साथ और समिति की सिफारिश के साथ-साथ निर्णय आदि की प्रति सहित भारत के

* * *

8. कारागार महानिदेशक, हरियाणा सभी ऐसे समय-पूर्व छोड़े जाने के मामले पर विचार के लिए राज्य स्तरीय समिति को प्रस्तुत करेंगे । समिति की बैठक तीन माह में एक बार होगी जिससे इस नीति के अधीन पुनर्विलोकन के मामलों में विलंब न हो । कारागार महानिदेशक, हरियाणा समिति द्वारा किए गए विनिश्चय की एक प्रति प्रत्येक आजीवन कारावास से सिद्धदोष व्यक्ति की नामावली के साथ एक सप्ताह के भीतर आगामी कार्रवाई के लिए राज्य सरकार को भेजेगा । ऐसे मामले, बंदी की पूर्ण पृष्ठभूमि और समिति की सिफारिश के साथ-साथ निर्णय आदि की प्रति सहित, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 432 के अधीन आदेशों के लिए मुख्य मंत्री, हरियाणा को प्रस्तुत किए जाएंगे । यह

संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन आदेशों के लिए राज्यपाल को प्रस्तुत किए जाएंगे ।	दोहराया जाता है कि किसी सिद्धदोष व्यक्ति को परिहार या दंडादेश के लघुकरण का मूल अधिकार नहीं है । राज्य सरकार परिहार संबंधी अपनी कार्यपालक वैवेकिक शक्ति को प्रयोग करते हुए प्रत्येक व्यक्तिगत मामले पर सभी सुसंगत बातों को ध्यान में रखते हुए विचार करेगी । यह नीति राज्य की शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसी रीति में जारी की जाती है कि आजीवन कारावास से सिद्धदोष व्यक्ति के मामले पर विचार करते समय कोई विभेद न किया जाए । यह नीति आजीवन कारावास से सिद्धदोष व्यक्ति को समय-पूर्व छोड़े जाने के सभी मामले पर, उनकी दोषसिद्धि की तारीख को विचार में लाए बिना, अधिसूचना की तारीख से लागू होगी । किसी सिद्धदोष व्यक्ति को समय-पूर्व छोड़े जाने के लिए विचार की जाने वाली तारीख नीति में उसके अपेक्षित दंडादेश के पूर्ण होने की तारीख होगी ।

5. **जगदीश** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने **साधु सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के उस निर्णय का अनुमोदन नहीं किया था, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ये नीतियां कार्यपालक अनुदेश हैं । इसके बजाय, इस न्यायालय ने **हरियाणा राज्य** बनाम **महेन्द्र सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में संप्रकाशित इस न्यायालय के निर्णय का अनुमोदन किया था, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया था कि परिहार की ये नीतियां कारागार अधिनियम, 1893 की धारा 59(5) के अधीन प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में हैं, जिसमें 'अंक प्रदान करने और दंडादेशों को कम करना' अनुध्यात है और इस प्रकार वे कानूनी नियम हैं । संहिता की धारा 401 और धारा 402 समुचित सरकार को साधारण या विशेष आदेश जारी करने और उन शर्तों के बारे में निदेश जारी करने के लिए सशक्त नहीं कर रही थीं जिन

---

[1] [1984] 3 उम. नि. प. 365 = (1984) 2 एस. सी. सी. 310.

[2] (2007) 13 एस. सी. सी. 606.

पर समय-पूर्व छोड़े जाने के लिए याचिकाएं प्रस्तुत कीं और निपटाई जानी चाहिएं । संहिता की धारा 432 और धारा 433 में संहिता की धारा 401 और धारा 402 के समनुरूप उपबंध हैं किंतु धारा 432 की उपधारा (5) में समुचित सरकार को साधारण या विशेष आदेश जारी करने के लिए सशक्त किया गया है । इसलिए तारीख 1 अप्रैल, 1974 को संहिता के प्रारंभ के पश्चात्, परिहार मंजूर करने के लिए साधारण या विशेष आदेश जारी करने की शक्ति संहिता की धारा 432 में पाई जाती है । इसलिए उसके पश्चात् जारी की गई नीतियां संहिता की धारा 432 के अधीन समुचित सरकार को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए विरचित करने के कारण कानूनी प्रकृति की हैं ।

6. वर्ष 1974 के पश्चात् विरचित की गई नीतियों में से किसी में भी, सिवाय उसके जो तारीख 13 अगस्त, 2008 को राज्य सरकार के राजपत्र में प्रकाशित की गई थी, विधि के किसी उपबंध को निर्दिष्ट नहीं किया गया है जिसके अधीन ऐसे विनिश्चयों को कारागार महानिदेशक को संसूचित किया गया है । **एल. हजारी मल कुथियाला** बनाम **आयकर अधिकारी, विशेष सर्किल, अंबाला कैंट**[1] वाले मामले में संप्रकाशित इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि शक्तियों का प्रयोग उस अधिकारिता के प्रति निर्देश होगा जो उस पर विधिमान्यता प्रदत्त करती है और न कि उस अधिकारिता के प्रति जिसके अधीन यह निरर्थक हो जाएगी । इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "5. ..... आयुक्त ने जब इस मामले को अंतरित किया था, तो उसने पटियाला आयकर अधिनियम को निर्दिष्ट नहीं किया था अपितु भारतीय आयकर अधिनियम को निर्दिष्ट किया था और यह अभिवाक् किया गया है कि यदि पटियाला आयकर अधिनियम पुनर्निर्धारण के प्रयोजनार्थ प्रवर्तन में था, तो कार्रवाई उस अधिनियम के अधीन की जानी चाहिए थी न कि भारतीय आयकर अधिनियम के अधीन । तथापि, इस तर्क में बल नहीं है क्योंकि

---

[1] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 200.

किसी शक्ति का प्रयोग उस अधिकारिता के प्रति निर्देश होगा जो उस पर विधिमान्यता प्रदत्त करती है न कि उस अधिकारिता के प्रति जिसके अधीन यह निरर्थक हो जाएगी । यह सिद्धांत सुस्थिर है । [पीतांबर वजीरसेठ **बनाम** धांदू नवलपा (आई. एल. आर. 12 बंबई 486, 489) वाला मामला देखें] ।"

7. विधि के इस सिद्धांत को **एन. मणि** बनाम **संगीता थिएटर और अन्य**[1] वाले मामले में संप्रकाशित इस न्यायालय की एक तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के निर्णय में दोहराया गया था, जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

"9. यह सुस्थिर है कि यदि किसी प्राधिकारी को विधि के अधीन कोई शक्ति है, तो उस शक्ति का प्रयोग करते हुए केवल इस कारण कि शक्ति के स्रोत को विनिर्दिष्ट रूप से निर्दिष्ट नहीं किया गया है या विधि के किसी गलत उपबंध के प्रति निर्देश किया गया है, तो इस बात से स्वयमेव शक्ति का प्रयोग उस समय तक दूषित नहीं होता है जब तक यह शक्ति विद्यमान होती है और विधि में उपलब्ध किसी स्रोत से पता लगाया जा सकता है ।"

8. अत: यदि उस कानूनी शक्ति के प्रति कोई विनिर्दिष्ट निर्देश नहीं है, जिसके अधीन ऐसी नीतियां जारी की गई हैं या यदि कोई गलत उपबंध वर्णित है, तो उस नीति के अनुदेश या तो कारागार अधिनियम, 1894 या संहिता की धारा 432 के अधीन विरचित कानूनी अनुदेश बने रहेंगे ।

9. **माडू राम** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2] वाले मामले में एक संविधान न्यायपीठ ने संविधान के अनुच्छेद 61 की परिधि और संहिता के उपबंधों पर विचार करते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया था :–

"54. ..... दूसरा अध्युपाय अनुच्छेद 72 और 161 में अभेद्य रूप से उपबंधित 'क्षमा अधिकारिता', यदि हम उसे मोटे तौर से उस प्रकार कहें, और उसके संबंध में धारा 433क के प्रभाव पर मुख्यत:

---

[1] (2004) 12 एस. सी. सी. 278.

[2] [1981] 4 उम. नि. प. 165 = (1981) 1 एस. सी. सी. 107.

आधारित है । परिहार करने की शक्ति सांविधानिक शक्ति है और किसी ऐसे विधान को अवश्य ही असफल होना पड़ेगा जो कि उसकी परिधि को कम करना और उसकी प्रक्रिया को पंगु बनाना चाहता है । तीसरी बात यह है कि इस पूर्ण शक्ति का प्रयोग सरकार की, चाहे वह राज्य की हो या केंद्र की, अभिरुचि, इच्छा या अनिच्छा पर नहीं छोड़ा जा सकता है, किंतु उसे उसी प्रकार युक्तिसंगत, सुसंगत और सुधारवादी होना चाहिए जैसे कि गणतंत्र में सभी लोक शक्ति का प्रयोग किया जाना आवश्यक है । इस आधार पर, हमें विभिन्न परिहार स्कीमों और दंडादेशों के लघुकरण से संबंधित परियोजनाओं के विद्यमान होने के मूल्य की संवीक्षा और छान-बीन करनी होगी ; हमें धारा 433क के ऊपर उनकी सर्वोच्चता की कसौटी पर न कसकर चौदह बंधित वर्षों के कष्ट के बिना आजीवन दंडादेशों का परिहार करने की विस्तृत और फायदाप्रद शक्ति को नियंत्रित करना पड़ेगा ।

* * * *

57. अब हम दूसरी दलील पर विचार कर सकते हैं जिसमें संविधान के अधीन परिहार संबंधी शक्ति और धारा 433क के संबंध में उसके प्रयोग के परिणामों के बारे में कहा गया है । किसी का भी यह पक्षकथन नहीं है – वास्तव में इस प्रकार की दलील की सुनवाई भी नहीं की जा सकती कि अनुच्छेद 72 और 161 के उपबंधों पर धारा 433क के उपबंध अभिभावी होंगे .....।

* * * *

59. यह स्पष्ट है कि ऊपर से देखने से दो शक्तियां, एक सांविधानिक और दूसरी कानूनी, सहविस्तारी हैं । दो बातें समरूप हो सकती हैं किंतु एक नहीं हो सकतीं । निश्चित रूप से यही अंतर है । हम इससे सहमत नहीं हो सकते कि ऐसी शक्ति, जो कि संहिता का परिणाम है, की समानता संघ और राज्य के सर्वोच्च कृत्यकारियों में संविधान द्वारा निहित किए गए उच्च परमाधिकार से की जा सकती है । स्रोत भिन्न है, उसका सार भिन्न है, आधार

भिन्न है, यद्यपि दोनों साथ-साथ समान रूप से चल रहे हैं । हम यह समझते हैं कि इन दोनों शक्तियों के समान होने का तो प्रश्न ही नहीं है, और स्पष्टत: सांविधानिक शक्ति 'अछूती' और 'अनुपगम्य' है तथा उसमें साधारण विधायी प्रक्रियाओं के उलट-फेर के दोष नहीं हो सकते । अत: धारा 433क को इस आधार पर अविधिमान्य नहीं ठहराया जा सकता कि वह अनुच्छेद 72 और 161 का अप्रत्यक्ष रूप से अतिक्रमण करती है । यह संहिता जो कुछ देती है, वह उसे ले भी सकती है और इसी कारण धारा 432 और 433(क) पर जो प्रतिबंध लगाया है, वह संसद् की विधायी शक्ति के भीतर है ।

60. फिर भी हमें अनुच्छेद 72 और 161 की सांविधानिक हैसियत को याद रखना चाहिए और दोनों पक्षों का ही आधार यह है कि राज्यपाल या राष्ट्रपति की क्षमा करने की शक्ति पर धारा 433क का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता है और न ही पड़ सकता है । इस तर्क का आवश्यक परिणाम यह है कि धारा 433क के होते हुए भी राष्ट्रपति और राज्यपाल पूर्वोक्त अनुच्छेदों के अधीन लघुकरण और (कारावास से) छोड़ने की शक्ति का प्रयोग करना जारी रखे हुए हैं ।

61. ..... निष्कर्ष यह है कि राज्य सरकार, चाहे राज्यपाल उसे पसंद करे या नहीं, सलाह दे सकती है, अनुच्छेद 161 के अधीन कार्य कर सकती है, और राज्यपाल उसकी सलाह से आबद्ध होता है । इस प्रकार लघुकरण और (कारावास से) छोड़े जाने की कार्रवाई सरकार के विनिश्चय के अनुसरण में की जा सकती है और आदेश राज्यपाल के अनुमोदन के बिना भी जारी किया जा सकता है, यद्यपि कारबार के नियमों के अधीन और सांविधानिक सौजन्य के तौर पर, यह बाध्यकारी है कि राज्यपाल के हस्ताक्षर से ही क्षमा, लघुकरण या (कारावास) से छोड़ने की कार्रवाई प्राधिकृत की जानी चाहिए । ..... राज्यपाल अपनी मंत्रिपरिषद् के संबंध में राष्ट्रपति से सीमित क्षेत्र में उच्चतर होने के सिवाय जिसके अंतर्गत अनुच्छेद 161 नहीं है, उससे उच्चतर नहीं होता । सांविधानिक निष्कर्ष यह

है कि राज्यपाल, राज्य सरकार की संक्षिप्त अभिव्यक्ति है और राष्ट्रपति, केंद्रीय सरकार का संक्षिप्त रूप ।

* * * *

69. ..... हमें इस विचार को अस्वीकृत करने में कोई भी हिचकिचाहट नहीं है कि अनुच्छेद 72/161 अनियंत्रित बने रहने चाहिएं । हमें यह निदेश देना पड़ेगा कि परिहार और दंडादेशन के लघुकरण की स्कीमों को अनन्तिम रूप से क्षमा-शक्ति के प्रयोग के अच्छे मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में मान लिया जाए – यह ऐसी अधिकारिता है जिसका उपयोग उतनी बार और उतना सुचारू रूप से करना अभिप्रेत है, जितना संभव हो, न कि उसका दुरुपयोग करना, क्योंकि ऐसा करने की लालसा के परिणामस्वरूप शक्ति का गलत प्रयोग किया जा सकता है ।

70. विद्वान् सालिसिटर जनरल का यह कहना ठीक है कि ये नियम स्पष्टत: कारागार अधिनियम (प्रिजन्स ऐक्ट) के अधीन बनाए गए हैं, न कि सांविधानिक शक्ति के अधीन । पूर्वकथित धारा 433क की परिधि के भीतर नहीं है । किंतु वह किसी भी प्रकार से राज्यों को परिहार संबंधी उन स्कीमों को जो कि हमें कुछ युक्तिसंगत मालूम पड़ती हैं, कार्यकरण नियमों के रूप में अपनाने से प्रवारित नहीं करता । जो कुछ भी हो, सरकार प्रत्येक बंदी का अति-सावधानी के साथ अध्ययन नहीं कर सकती और अंकों की वर्तमान पद्धति उस समय तक काम नहीं कर सकती जब तक कि अधिक प्रगतिशील स्कीम तथा विशेषज्ञों द्वारा दी गई सलाह के अनुसार तैयार की गई स्कीम बना न ली जाए । धारा 433क इस पद्धति को निषिद्ध नहीं कर सकती, क्योंकि उसे अनुच्छेद 161 द्वारा उन्मुक्ति प्राप्त है । हम बहुत ही जोर देकर यह सुझाव देते हैं कि भंग किए बिना, परिहार के उन्हीं नियमों और स्कीमों को अनुच्छेद 161 की मूल आत्मा को कायम रखते हुए, जारी रखा जा सकता है और उसके फायदे उन सभी को दिए जा सकते हैं जो कि उनकी वैध परिधि के भीतर आते हैं – किंतु उन विशेष मामलों में यह लागू नहीं होगा जिन्हें अन्य सुसंगत बातों की आवश्यकता हो ।

कार्यपालिका की राज्य-क्षमा की विस्तृत शक्ति स्वयं द्वारा सृष्ट नियमों के जरिए प्रतिबंधित नहीं की जा सकती ।

* * * *

72. हम अपने निष्कर्ष निकालते हुए इस प्रकार अपनी बात समाप्त कर रहे हैं –

(1) * * *

(2) हम विभिन्न राज्यों द्वारा बनाए गए परिहार संबंधी नियमों और दंडादेशन-लघुकरण विषयक कानूनों पर धारा 433क की वर्तमान सर्वोपरिता की अभिपुष्टि करते हैं ।

(3) * * *

(4) हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि धारा 432 और 433 संविधान के अनुच्छेद 72 और 161 की अभिव्यक्तियां नहीं हैं, किंतु वे पृथक्, यद्यपि समरूप, शक्तियां हैं और धारा 433क पहले वाले इन उपबंधों को पूर्णत: या भागत: अकृत करके, क्षमा, लघुकरण और उसी प्रकार की अन्य बातों की सांविधानिक शक्तियों का अतिक्रमण नहीं करती या उसके पूर्ण प्रवर्तन से विचलित नहीं होती ।

(5) * * *

(6) हम यह अभिनिर्धारित करने के लिए कि आजीवन कारावास अंतिम सांस तक चलता रहता है और अर्जित किए गए परिहारों की अवधि चाहे जितनी भी हो, बंदी छोड़े जाने का दावा तभी कर सकता है, यदि सरकार उसके बचे हुए दंडादेश का परिहार कर देती है, गोडसे वाले मामले का अनुसरण करते हैं ।

(7) * * *

(8) संविधान के अनुच्छेद 72 और 161 के अधीन शक्ति का प्रयोग केंद्रीय और राज्य सरकारें करती हैं, न कि

राष्ट्रपति या राज्यपाल स्वयं ही । समुचित सरकार की सलाह राज्य के मुखिया को आबद्ध करती है । प्रत्येक अलग-अलग मामले के लिए अलग-अलग आदेश आवश्यक नहीं है किंतु कोई भी साधारण आदेश इतना काफी स्पष्ट होना चाहिए जिससे कि मामलों का समूह स्पष्ट हो जाए और संपूर्ण समूह के बारे में बुद्धि का इस प्रकार प्रयोग किया जाना उपदर्शित हो जाए ।

(9) * * *

(10) यद्यपि परिहार संबंधी नियम या दंडादेशन-लघुकरण उपबंध अपने ही बल से धारा 433क के विरुद्ध लागू नहीं हो सकते, तथापि, वे धारा 433क को उस दशा में अध्यारोहित करेंगे यदि सरकार, चाहे केंद्रीय हो या राज्य, ठीक इन्हीं नियमों या इन स्कीमों के जरिए अपनी सांविधानिक शक्ति का प्रयोग करते हुए मार्गदर्शन करते हैं । हम इसे उचित मानते हैं कि जब तक प्राप्त किया गया अनुभव, प्रचलित सामाजिक दशाओं तथा दंड संबंधी स्वीकृत विचारधारा के अनुसार – जो कि हमारी दृष्टि में वांछनीय कदम है, नए नियम न बना दिए जाएं, तब तक प्रस्तुत परिहार और छोड़ने संबंधी स्कीमों को अनुच्छेद 72/161 के अधीन मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में उपयोगी माना जा सकता है और छोड़ने के आदेश पारित किए जा सकते हैं । यदि अत्यधिक क्रूर अपराधियों की दशा में, धारा 433क को स्वयं ही अनुच्छेद 72/161 के प्रयोग के लिए मार्गदर्शन सिद्धांत के रूप में माना जाता है, तो हम सरकार को गलत नहीं बता सकते । हमारे ये विचार क्रम-भंग से बचने के लिए सिफारिश के तौर पर किए गए हैं, किंतु यह विनिश्चत करना केंद्रीय या राज्य सरकार पर निर्भर है कि क्या परिहार संबंधी प्रचलित नियम तब तक अस्तित्व में नहीं रहने चाहिएं जब तक कि उनके स्थान पर अधिक हितकारी स्कीम न बना दी जाए ।

(11) उत्तर प्रदेश प्रिजनर्स रिलीज ऑन प्रोबेशन ऐक्ट,

1938, जो कि अनुज्ञप्ति के अधीन सीमित अभिवृद्धि करने में समर्थ बनाता है, अनिर्णीत तथा उदारपूर्ण प्रकार के ऐसे कारावास के रूप में जो कि विधायी रूप से स्वीकृत किया गया हो, प्रभावी होगा और अनुज्ञप्ति प्राप्त ऐसी अभिवृद्धि की गणना 14 वर्ष की अस्तित्वावधि के प्रयोजनार्थ की जाएगी । उसी प्रकार के अन्य कानूनों और नियमों को भी समरूप गुणकारिता प्राप्त होगी ।

* * * *"

10. **भारत संघ** बनाम **श्रीहरण और अन्य**[1] वाले मामले में संविधान न्यायपीठ ने, अन्य बातों के साथ-साथ, संविधान के अनुच्छेद 161 और 162 के उपबंधों की परीक्षा की थी । इसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

"22. अत: पारिणामिक स्थिति यह होगी कि परिहार, लघुकरण आदि प्रदान करने के संबंध में संघ और इसके प्राधिकारियों को कार्यपालक शक्ति उपलब्ध है और अनुच्छेद 73(1)(क) के साथ पठित इसके परंतुक की विवक्षा के फलस्वरूप इनका प्रयोग किया जा सकता है और राज्य द्वारा ऐसी शक्ति का प्रयोग अनुच्छेद 162 के परंतुक में अनुध्यात अनुसार उस सीमा तक नियंत्रित और परिसीमित होगा जिस सीमा तक दंड प्रक्रिया संहिता में ऐसा नियंत्रण और परिसीमाएं विहित हैं ।"

11. इस प्रकार, संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन शक्ति का प्रयोग राज्य सरकारों द्वारा किया जा सकता है न कि राज्यपाल द्वारा स्वयमेव । समुचित सरकार की सलाह राज्य के मुखिया को आबद्ध करती है । प्रत्येक अलग-अलग मामले के लिए अलग-अलग आदेश आवश्यक नहीं है किंतु कोई भी साधारण आदेश इतना पर्याप्त स्पष्ट होना चाहिए जिससे कि मामलों का समूह स्पष्ट हो जाए और संपूर्ण समूह के बारे में बुद्धि का इस प्रकार प्रयोग किया जाना उपदर्शित हो जाए । । अत: राज्य सरकार की नीतियां संविधान के अनुच्छेद 161 और संहिता की धारा

---

[1] (2016) 7 एस. सी. सी. 1.

432, 433 और धारा 433क दोनों के अधीन की स्थितियों को सम्मिलित करते हुए संयुक्त नीतियां हैं । यदि राज्य सरकार अपनी सांविधानिक शक्ति के द्वारा शासित होने का विनिश्चय करती है, तो संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन परिहार संहिता की धारा 433क के अधीन परिहार पर अभिभावी होगा ।

12. **हरियाणा राज्य** बनाम **नौरत्ता सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने **माडू राम** (उपर्युक्त) वाले मामले को यह अभिनिर्धारित करने के लिए निर्दिष्ट किया था कि संहिता की धारा 433क में यथा विनिर्दिष्ट 14 वर्ष की अवधि बंदी द्वारा किसी परिहार की अवधि को सम्मिलित किए बिना भुगते जाने वाले कारावास की वास्तविक अवधि है । यह न्यायालय उस मामले की परीक्षा कर रहा था जिसमें विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया गया था किंतु उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया गया था । वह उच्च न्यायालय के समक्ष अपील के लंबित रहने के दौरान जमानत पर था । बंदी का दावा यह था कि उच्च न्यायालय के आदेश के निबंधनों के अनुसार जमानत की अवधि को कारावास की 14 वर्ष की अवधि में सम्मिलित किया जाना चाहिए । इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "5. हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि संहिता की धारा 433क कानून की पुस्तक में तारीख 8 दिसंबर, 1978 को पुर:स्थापित की गई थी जिसके द्वारा किसी राज्य सरकार की किसी व्यक्ति को (जिसे मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय किसी अपराध के लिए आजीवन कारावास से दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया है) छोड़ने की शक्ति को यह परंतुक पुर:स्थापित करते हुए कम कर दिया गया है कि ऐसे सिद्धदोष व्यक्ति को कम से कम 14 वर्ष का कारावास भुगतना चाहिए । माडू राम **बनाम** भारत संघ [(1981) 1 एस. सी. सी. 107] वाले मामले में इस न्यायालय की एक संविधान न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया था कि नए उपबंध में परिकल्पित 14 वर्ष की अवधि बंदी द्वारा परिहार की

---

[1] (2000) 3 एस. सी. सी. 514.

किसी अवधि को सम्मिलित किए बिना भुगतने वाले कारावास की वास्तविक अवधि है ।"

9. **जगदीश** (उपर्युक्त) वाले मामले में उठाया गया प्रश्न इस बारे में था कि क्या वह नीति, जिसमें दंडादेश के परिहार के लिए उपबंध किया गया है, ऐसी नीति होनी चाहिए जो अभियुक्त की दोषसिद्धि की तारीख पर विद्यमान थी या ऐसी होनी चाहिए जो समुचित सरकार द्वारा समय-पूर्व छोड़े जाने के लिए उसके मामले पर विचार करने की तारीख को विद्यमान थी । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि संहिता में धारा 433क अंत:स्थापित करते हुए संशोधन भविष्यलक्षी रूप से लागू होगा । आजीवन कारावास से सिद्धदोष व्यक्ति, जिन्हें तारीख 18 दिसंबर, 1978 अर्थात् संशोधन के प्रवर्तन की तारीख से पूर्व दंडादिष्ट किया गया था, संहिता की धारा 433क के उपबंधों के क्षेत्र के भीतर नहीं आएंगे । परिहार संबंधी नियमों/दंडादेशन-लघुकरण की नीतियों को संविधान के अनुच्छेद 72 या 161 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करने के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में लिया जा सकता है और ऐसी स्थिति में, परिहार संबंधी नियम संहिता की धारा 433क पर अभिभावी होंगे । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि संहिता की धारा 433क किसी भी रीति में राष्ट्रपति/राज्यपाल को संविधान के अनुच्छेद 72/161 के अधीन प्रदत्त सांविधानिक शक्ति को प्रभावित नहीं कर सकती है और इससे प्रभावित नहीं होती है । इसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "26. इस न्यायालय ने अशोक कुमार [(1991) 3 एस. एस. सी. 498 = 1991 एस. सी. सी. (क्रि.) 845 = ए. आई. आर. 1991 एस. सी. 1792] वाले मामले में माडू राम [(1981) 1 एस. सी. सी. 107], भागीरथ **बनाम** दिल्ली प्रशासन [(1985) 2 एस. एस. सी. 580 = 1985 एस. सी. सी. (क्रि.) 280 = ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 1050], केहर सिंह **बनाम** भारत संघ [(1989) 1 एस. एस. सी. 204 = 1989 एस. सी. सी. (क्रि.) 86 = ए. आई. आर. 1989

एस. सी. 653] वाले मामलों सहित अपने बहुत सारे पूर्ववर्ती निर्णयों को ध्यान में रखते हुए इस विषय पर विस्तारपूर्वक विचार किया था और निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले –

> '(i) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 433क में केवल उन सीमित सिद्धदोष व्यक्तियों को 14 वर्ष की वास्तविक कैद पूर्ण होने से पहले समय-पूर्व छोड़ने के लिए इनकार किया गया है जो मृत्यु दंड के अपराध अर्थात् आपवादिक रूप से जघन्य अपराध के लिए सिद्धदोष हैं ;
>
> (ii) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 433क राष्ट्रपति/राज्यपाल को संविधान के अनुच्छेद 72/161 के अधीन प्रदत्त सांविधानिक शक्ति को किसी प्रकार से प्रभावित नहीं कर सकती है और प्रभावित नहीं होती है ;
>
> (iii) परिहार के नियमों की एक सीमित परिधि है और आजीवन कारावास का दंडादेश भुगत रहे किसी सिद्धदोष व्यक्ति की दशा में इसका केवल तब महत्व हो जाता है यदि दंडादेश का लघुकरण या परिहार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 433क के अध्यधीन या संविधान के अनुच्छेद 72/161 के अधीन सांविधानिक शक्ति का प्रयोग करते हुए किया जाता है ; और
>
> (iv) किसी सिद्धदोष व्यक्ति के मामले पर 1958 के नियमों को ध्यान में रखते हुए संविधान के अनुच्छेद 72 और 161 के अधीन विचार किया जा सकता है ।'

* * * *

28. फिर भी, हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि परिहार प्रदान करने की राज्य की शक्ति उसके अनन्य अधिकार-क्षेत्र के भीतर है और यही कारण है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 72 और अनुच्छेद 161 के उपबंधों को सम्मिलित किया था । इस उत्तरदायित्व को कार्यपालिका पर

सांविधानिक आदेश के द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए डाला गया था कि समुचित मामलों में परिहार प्रदान करके कुछ लोक प्रयोजन को पूरा करने की आवश्यकता हो सकती है । इस शक्ति का कदापि यह आशय नहीं था कि कार्यपालिका द्वारा इसका प्रयोग या उपयोग प्रविलंबन की अनियंत्रित शक्ति के रूप में किया जाए । क्षमा की शक्ति का प्रयोग सावधानीपूर्वक और समुचित मामलों में किया जाना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप अधिनिर्णीत कारावास का दंडादेश कम किया जाता है और इससे किसी प्रकार से दोषसिद्धि समाप्त नहीं हो जाती है । यह वह शक्ति है जो राज्य अपने स्वयं के न्यायिक आदेश के विरुद्ध प्रयोग करता है । राज्य का परिहार करने का कृत्य उस कार्य को नहीं रोकता है जो न्यायिक रूप से किया गया है । किसी निर्णय के द्वारा दिए गए दंड को रद्द नहीं किया जाता है अपितु सिद्धदोष व्यक्ति राज्य की क्षमा की उदार नीति का फायदा प्राप्त करता है । तथापि, संविधान के अनुच्छेद 161 या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 433क के अधीन ऐसी शक्ति का प्रयोग कानूनी उपबंधों में भिन्न-भिन्न प्रकार से हो सकता है चूंकि दंडादेशन-लघुकरण की नीति मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में कारावास की अवधि में मात्र कमी करने की नीति है जबकि संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन क्षमा का कार्य स्वयमेव दंड का लघुकरण कर देता है ।"

13. इस प्रकार, किसी बंदी को उस अपराध की दशा में जिसके लिए दोषसिद्धि पर दंडादेश मृत्यु दंड है, संहिता की धारा 433क के अभिभावी उपबंध को ध्यान में रखते हुए संहिता की धारा 432 के अधीन किसी समुचित सरकार द्वारा विरचित की गई परिहार की नीति का फायदा लेने के लिए उसे परिहार के बिना 14 वर्ष की न्यूनतम अवधि का कारावास भुगतना होगा । तथापि, माननीय राज्यपाल की दंडादेश का लघुकरण या क्षमा करने की शक्ति किसी ऐसे निर्बंधन या परिसीमा से स्वतंत्र है । राज्य सरकार परिहार प्रदान करने की नीति या तो संहिता की धारा 432 या संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन विरचित कर सकती है । राज्यपाल संहिता की धारा 433क में किसी बात के होते हुए

संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन लघुकरण और (कारावास से) छोड़े जाने की शक्ति का प्रयोग कर सकता है । इस प्रकार, लघुकरण और (कारावास से) छोड़े जाने की कार्रवाई सरकार के विनिश्चय के अनुसरण में की जा सकती है और आदेश राज्यपाल के अनुमोदन के बिना जारी किया जा सकता है । तथापि, कारबार के नियमों के अधीन और सांविधानिक सौजन्य के तौर पर वह राज्यपाल के अनुमोदन की ईप्सा कर सकती है यदि ऐसा छोड़ा जाना संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन है ।

14. इसके अतिरिक्त भी, इस न्यायालय का यह सतत मत रहा है कि किसी बंदी को समय-पूर्व छोड़े जाने पर विचार करने के लिए दोषसिद्धि के समय पर चालू नीति को ध्यान में रखा जाएगा । **जगदीश** (उपर्युक्त) वाले मामले में उस नीति का अवधारण करते हुए, जो दंडादेश का परिहार करने के लिए लागू होगी, इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया था :–

> "27. महेन्द्र सिंह वाले मामले में इस न्यायालय ने, जैसा कि इसमें ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, यह अभिनिर्धारित किया था कि ऐसे मामलों में लागू होने वाला नीतिगत विनिश्चय वह होगा जो उसकी दोषसिद्धि के समय पर प्रचलित था । यह निष्कर्ष निम्नलिखित आधार पर निकाला गया था –
>
> > '38. भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 और 21 के अधीन किसी सिद्धदोष व्यक्ति के सांविधानिक रक्षोपायों को ध्यान में रखते हुए परिहार के लिए विचार किए जाने वाले अधिकार को एक विधिक अधिकार अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए । ऐसा विधिक अधिकार न केवल कारागार अधिनियम से अपितु तद्धीन विरचित किए गए नियमों से भी उत्पन्न होता है ।'"

15. तारीख 13 अगस्त, 2008 की समय-पूर्व छोड़े जाने की नीति राज्यपाल के नाम में जारी की गई थी और शासकीय राजपत्र में प्रकाशित की गई थी । यह अधिसूचना कथित रूप से संहिता की धारा

432 की उपधारा (1) और धारा 433 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी की गई थी । ऊपर प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, ऐसी नीति संहिता के उपबंधों के निबंधनों के अनुसार समुचित प्रकार को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए है और इस प्रकार यह कानूनी प्रकृति की है । तारीख 12 अप्रैल, 2002 की अन्य नीति वास्तव में वित्तायुक्त और सचिव, हरियाणा सरकार, कारागार विभाग, चंडीगढ़ द्वारा कारागार महानिदेशक, हरियाणा, चंडीगढ़ को जारी किया गया एक ज्ञापन है । समय-पूर्व छोड़े जाने की यह नीति भी संहिता के उपबंधों के अनुसार है ।

16. हरियाणा सरकार की ओर से विद्वान् अपर महाधिवक्ता, श्री निखिल गोयल ने यह दलील दी कि समय-समय पर भिन्न-भिन्न नीतियां जारी की गई हैं और बाद की नीति ने पूर्ववर्ती नीतियों को अधिक्रांत किया है, इसलिए कोई अंतराल नहीं था जब समय-पूर्व छोड़े जाने की कोई नीति प्रवर्तन में नहीं थी या किसी सुसंगत समय पर दो नीतियां प्रवर्तन में थीं । श्री गोयल का तर्क स्वीकार करने योग्य है क्योंकि तारीख 12 अप्रैल, 2002 की नीति तारीख 8 अगस्त, 2000 को परिचालित पूर्ववर्ती नीति का अधिक्रमण करते हुए है, जिसे बाद में तारीख 23 फरवरी, 2001 को प्रतिस्थापित किया गया था । तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति तारीख 12 अप्रैल, 2002 की पूर्ववती नीति के स्थान पर प्रतिस्थापित की गई थी और यह नीति राज्य के राज्यपाल की ओर से प्रकाशित की गई थी । तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति संहिता की धारा 433 के साथ पठित धारा 432 की उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए और तारीख 12 अप्रैल, 2002 के सरकारी ज्ञापन और सभी अन्य नीतियों का अधिक्रमण करते हुए जारी की गई थी । तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति एक कानूनी नीति है । उक्त नीति को संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए क्षमा करने, दंडादेश का परिहार या लघुकरण करने के लिए माननीय राज्यपाल में निहित विवेकाधिकार को छीनने की कोशिश नहीं कहा जा सकता है और कोशिश नहीं की गई है अपितु यह कानून के अधीन जारी की गई एक नीति है और इसलिए इस

नीति का एक कानूनी बल है । तारीख 12 अप्रैल, 2002 की नीति भी एक कानूनी नीति है और इसे तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति की बजाय एक उच्चतर स्थान पर नहीं रखा जा सकता है और इसका कारण यह है कि इसमें माननीय राज्यपाल का अनुमोदन प्राप्त करने की ईप्सा की गई है । इस नीति को विनिर्दिष्ट रूप से तारीख 13 अगस्त, 2008 को अभिभावी किया गया था और यह उन सिद्धदोष व्यक्तियों के लिए प्रवर्तनीय नहीं होगी जो तारीख 13 अगस्त, 2008 के पश्चात् दोषसिद्ध किए गए हैं ।

17. संहिता की धारा 433 एक सर्वोपरि खंड से आरंभ होती है जिसमें समुचित सरकार के किसी ऐसे व्यक्ति के आजीवन कारावास के दंडादेश को निलंबित करने के अधिकार को निर्बंधित किया गया है जिस पर ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्धि पर आजीवन कारावास का दंडादेश अधिरोपित किया गया है, जिस अपराध के लिए मृत्यु दंड विधि द्वारा उपबंधित दंडों में से एक है और ऐसा व्यक्ति कारावास से तब तक नहीं छोड़ा जाएगा जब तक उसने चौदह वर्ष का कारावास पूरा न कर लिया हो । अत: किसी बंदी को चौदह वर्ष का वास्तविक कारावास भुगतने के पश्चात् छोड़ने की समुचित सरकार की शक्ति राज्य सरकार में निहित है । दूसरी ओर, राज्यपाल को प्रदत्त शक्ति, यद्यपि जो राज्य की सहायता और सलाह से प्रयुक्त की जाती है, किसी ऐसे निर्बंधन से रहित है कि बंदी द्वारा वास्तविक अवधि का कारावास भुगत लिया गया हो । इस प्रकार, यदि किसी बंदी ने चौदह वर्ष के वास्तविक कारावास से अधिक भुगत लिया है तो राज्य सरकार, एक समुचित सरकार के रूप में, समय-पूर्व छोड़े जाने का आदेश पारित करने के लिए सक्षम है किंतु यदि बंदी ने चौदह वर्ष का वास्तविक कारावास या इससे अधिक नहीं भुगत लिया है, तो राज्यपाल को संहिता की धारा 433क के अधीन अधिरोपित निर्बंधनों के होते हुए किसी व्यक्ति के दंड को क्षमा, उसका प्रविलंबन, विराम या परिहार करने की अथवा दंडादेश में निलंबन, परिहार या लघुकरण करने की शक्ति है । ऐसी शक्ति राज्य की शक्ति का प्रयोग करते हुए है, यद्यपि राज्यपाल राज्य सरकार की सहायता और सलाह पर कार्य करने के लिए आबद्ध है ।

18. तारीख 12 अप्रैल, 2002 की नीति उन बंदियों के मामले में लागू है जिन्होंने चौदह वर्ष के कारावास का वास्तविक दंडादेश भुगत लिया है और उन बंदियों पर भी लागू है जिन्होंने चौदह वर्ष का वास्तविक कारावास पूरा नहीं किया है । अत: उन बंदियों के मामले, जिन्होंने चौदह वर्ष का वास्तविक कारावास पूरा कर लिया है, राज्य सरकार द्वारा संहिता की धारा 432 और धारा 433 के निबंधनों के अनुसार विनिश्चित किए जा सकते हैं, यदि राज्य सरकार माननीय राज्यपाल के अनुमोदन की ईप्सा करना नहीं चाहती है । सभी मामलों में माननीय राज्यपाल के अनुमोदन की ईप्सा करने में कुछ भी अवैध या अनुचित नहीं है किंतु जहां संहिता की धारा 433क की परिधि के अंतर्गत आने वाले मामलों में बंदी ने चौदह वर्ष का वास्तविक कारावास नहीं भुगत लिया है, वहां यह माननीय राज्यपाल पर निर्भर है कि वह संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग, यद्यपि राज्य सरकार की सहायता और सलाह पर, करे । हमारा यह निष्कर्ष है कि तारीख 12 अप्रैल, 2002 की नीति के खंड (ख) में उन बंदियों के मामलों पर विचार किए जाने के लिए उपबंध किया गया है जिन्होंने विचारणाधीन अवधि सहित 10 वर्ष का वास्तविक कारावास भुगत लिया है, परंतु ऐसे दंडादेश की कुल अवधि परिहार सहित चौदह वर्ष से कम न हो । संहिता की धारा 433क द्वारा जिनके बारे में परिहार अनुध्यात नहीं किया गया है, वहां राज्यपाल द्वारा संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए दंडादेश को कम करने की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है । उक्त नीति की अंतिम पंक्ति में यह स्पष्ट किया गया है कि ऐसे मामले बंदी की पूरी पृष्ठभूमि और समिति की सिफारिशों के साथ और आदेशों के लिए निर्णय की प्रति सहित संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल के समक्ष भेजे जाएंगे ।

19. तारीख 13 अगस्त, 2008 की अधिसूचना समुचित सरकार को संहिता की धारा 432(5) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रकाशित की गई थी, जिसमें यह उपबंधित है कि समुचित सरकार दंडादेशों के निलंबन के बारे में और उन शर्तों के बारे में जिन पर

अर्जियां उपस्थित कीं और निपटाई जानी चाहिएं, साधारण नियमों या विशेष आदेशों द्वारा निदेश दे सकती है । अत: समय-समय पर जारी की गई सभी नीतियां संहिता की धारा 432 के अधीन जारी की गई हैं, यद्यपि तारीख 13 अगस्त, 2008 को अंतिम बार जारी की गई नीति के सिवाय किसी भी नीति में ऐसे उपबंधों के प्रति निर्देश नहीं किया गया है । मार्गदर्शक सिद्धांत या परिहार आदि की नीतियां विरचित करने की शक्ति का स्रोत पहले बंदी अधिनियम, 1894 की धारा 59(5) में था और अब संहिता की धारा 432(5) के निबंधनों के अनुसार है । इसलिए ऐसी नीतियां कानूनी प्रकृति की हैं जो समुचित सरकार को संहिता की धारा 432(5) के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए विरचित की गई हैं ।

20. तारीख 13 अगस्त, 2008 की नीति का खंड 2(ग) उन सिद्धदोष व्यक्तियों के संबंध में है, जिन्हें ऐसा अपराध कारित करने के लिए आजीवन कारावास दिया गया है जो भारतीय दंड संहिता, 1860 में आजीवन कारावास के लिए दंडनीय के रूप में परिभाषित है किंतु मृत्यु दंडादेश से दंडनीय नहीं है । ऐसे बंदियों के मामलों पर विचारणाधीन अवधि सहित 10 वर्ष का वास्तविक दंडादेश पूर्ण होने के पश्चात् विचार किया जा सकता है बशर्ते ऐसे दंडादेश की परिहार सहित कुल अवधि चौदह वर्ष से कम न हो । विभेद यह है कि ऐसे मामलों में परिहार को विचार में लिया जाता है, जबकि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन ऐसे अपराध के लिए, जो मृत्यु से दंडनीय है, किसी सिद्धदोष बंदी द्वारा अर्जित परिहार को समय-पूर्व छोड़े जाने के लिए विचार में नहीं लिया जा सकता है । यदि भारतीय दंड संहिता के अधीन अपराध के लिए आजीवन कारावास के मामलों में समय-पूर्व छोड़े जाने के लिए किसी बंदी के मामले पर विचार किया जाना है, तो संहिता की धारा 433क के अधीन वर्जन लागू नहीं होगा । **जगदीश** (उपर्युक्त) वाले मामले में के निर्णय को उस प्रभेद को ध्यान में रखते हुए पढ़ा जाना चाहिए जो माननीय राज्यपाल द्वारा प्रयोग की जाने वाली और राज्य सरकार द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति के बीच किया गया है ।

21. अत: हमारा यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय द्वारा जारी

किए गए निदेश संधार्य नहीं हैं और इसका कारण यह है कि इन नीतियों को बंदी द्वारा भुगत लिए गए कारावास की अवधि को ध्यान में रखते हुए पढ़ा जाना चाहिए । परिहार की शक्ति का प्रयोग राज्य सरकार द्वारा, एक समुचित सरकार के रूप में, वहां किया जाना चाहिए यदि बंदी ने संहिता की धारा 433क की परिधि के अंतर्गत आने वाले मामलों में चौदह वर्ष का वास्तविक कारावास भुगत लिया है और यदि कारावास चौदह वर्ष से कम है तो समय-पूर्व छोड़े जाने की शक्ति का प्रयोग राज्यपाल द्वारा, यद्यपि राज्य सरकार की सहायता और सलाह पर, किया जा सकता है ।

22. परिणामतः, विद्वान् एकल न्यायपीठ द्वारा जारी किए गए निदेश संधार्य नहीं हैं और तद्द्वारा अपास्त किए जाते हैं ।

23. इस मामले में बंदी ने राज्य द्वारा प्रस्तुत किए गए अभिरक्षा प्रमाणपत्र के अनुसार तारीख 6 जुलाई, 2021 को 12 वर्ष और 25 दिन पूरे कर लिए हैं । तारीख 13 अगस्त, 2008 की राज्य सरकार की नीति के निबंधनों के अनुसार, जो नीति बंदी की दोषसिद्धि की तारीख को लागू थी, उसे समय-पूर्व छोड़े जाने के मामले पर केवल उसके द्वारा चौदह वर्ष का वास्तविक कारावास पूरा किए जाने के पश्चात् विचार किया जा सकता है । तथापि, राज्य सरकार चौदह वर्ष से कम कारावास भुगतने के पश्चात् समय-पूर्व छोड़ने के लिए प्रश्नगत बंदी के मामले पर संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन विचार कर सकती है ।

24. तद्नुसार, इन अपीलों का निपटारा किया जाता है ।

अपीलों का निपटारा किया गया ।

जस.